

५
११०
२५५

३७
२५३

३७
२५३

२
५५
२०५
२०४

११५
२

३
१३८

फ
१३३

८५

॥ श्री ॥

आकारेश्वर माहात्म्य

भाषा टीका संयुक्त



जिस को

मुं० हरिजनलाल

श्री चित्रगुप्तवंशीय वर्मा काजीमंडी,

श्री काशी निवासी ने

सर्वसाधारणके हितार्थ, श्री काशी खण्डसे
आकर्षण किया।



प्रकाशक

ठा० धर्मदत्त शर्मा

नीची ब्रह्मपुरी काशी

फाल्गुण कृ० ११ सं० १९६९ वि०, रा० रा० १०

बाबू ठाकुरप्रसाद खत्री द्वारा, व्यापारी और कारीगर प्रेस, में मुद्रित हुआ

स्मर्पण

॥ ॐ नमः शिवाय ॥

प्रभो ! आप श्री काशी के नाथ हैं, और दास आप के श्री काशी पुरी की प्रजाओं में एक नीच प्रजा हैं, अर्थात् जैसा है आप का है, आप को सम्हारतेही बनैगा ।

निज शरणावलम्बियों पर विना किसी विचार के कृपा करना यह आप का सुभाव है किन्तु इसी से आप का एक नाम भोलेनाथ है, वो इसी को स्मरण करि यह अचमूर्ति सदा निर्भय रहता है ।

और अपने सद्गुणसम्पन्न राजा का सुयश सदा गान करना, वो यथा शक्ति भेंट देना यह प्रजामात्र का उचित कार्य है, सो इस दीन के पास न तो बिद्या की बुद्धिही है, और न धन, तो कैसे बने ? अतएव दूसरेही की गाई गीत को गा रहा है, वो श्रीसरकारी सुयशही को महा अमूल्य रत्न मान कर श्री सेवा में भेंट करता है । आज्ञा है इस मर्तिमन्द के साहस को देखकर श्रीयुगल प्रिया प्रीतम अवश्य हँसेंगे वो प्रसन्न होंगे ।

दीन हरजिनलाल

भूमिका ।

रसिकजनो ! श्रीकाशी की भूमि यद्यपि शिव लिंगमय है और सबकी अधिक मर्यादा भी है, तथापि ४२ लिंग की (जिसकी सविस्तर कथा श्री-काशी खण्ड में है) अति विशेष मर्यादा मानी गई है, और उन ४२ लिंगोंमें १४ लिंग की और भी अधिक महिमा है, वो उन १४ लिंगोंमें श्रीओंकारेश्वर की महिमा कुछ और भी अधिक है, परन्तु यह बात सर्वसाधारण परविदि नहीं है, अतएवं यह श्रीओं-कारेश्वर के माहात्म्य की अतिललित कथा श्री स्कन्धपौराण, चतुर्थ काशीखण्ड उत्तरार्ध तिहत्तर वो चौहत्तरवें अध्याय अंतर्गत, उमामहेश्वर तथा अगस्त्य, वोस्कन्द, और दमन, वोगर्गाचार्य, सूत, वोवेदव्यास और अठ्ठासी हजार ऋषियों वो सूतजी के प्रश्नोत्तरो में जो वर्णित है,

उसी कथा को इस अनुचर ने अपने जन्म वो वाक्य तथा लेखको सफल करने, किन्तु अपने सनातन धर्मावलम्बी सर्वसाधारणजनों को सहज में ज्ञात होने के अर्थ यथामति संक्षेप करके मूलसंस्कृत बोटी का भाषा युक्त प्रकाशित किया है, आशा करता हूं कि भगवत जन लोग, इस परमहितकर सर्वेश्वर शंकर भगवान के अद्भुत चरित्र को परमोत्तम मानकर अवश्य आदर देंगे,

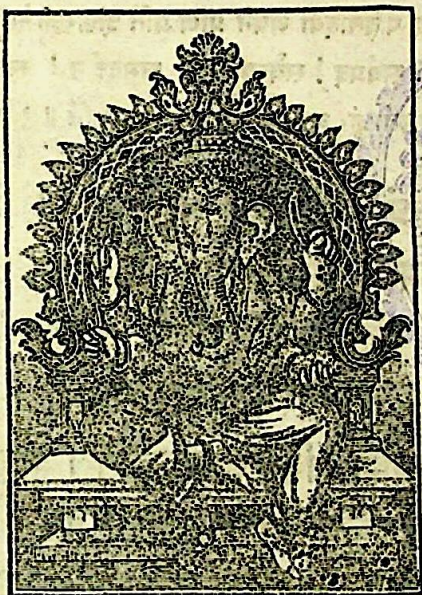
और महल्ले मत्स्योदरी (मछोदरी) के उत्तर श्री ओंकारेश्वर (हुक्कालेसन) नामसे विराजमान जो प्रसिद्ध लिंग है उनके चरणोंमें पूर्णश्रद्धा युक्त भक्ति करेंगे ॥

इसके सदा छपानेका अधिकार प्रकाशक ने निजहस्तगत रक्खा है ।

दीन हरिजनलाल,



॥ श्रीगणेशायनमः ॥



श्री १०८ स्वामी राजा राम चन्द्रायनमः ॥
श्रीगौरेशिंकराभ्यांनमः ॥ तथा श्रीओंकारेश्वरायनमः ॥



अथ श्रीओंकारेश्वर माहात्म्यं प्रारभ्यते



देव्युवाच-मू० श्लोक-देवदेव जगन्नाथशर्व सर्वदसर्वग ।
सर्वहृक् सर्वजनक किञ्चित्च्छामितद्भद ॥ १ ॥

टी० (एक समय पार्वतीदेवी अपने प्राण पति शंकरजी से पूछा) हे देवदेव !
जगन्नाथ ! सर्वप्रद ! सर्वव्यापक ! समदर्शन ! सर्वजनक ! सर्व !
मैं कुछ पूछती हूँ, आप कृपाकर उससे बता दें ॥ १ ॥

इदंतवाप्रियंक्षेत्रं कर्मबीज महौषधम् । नैःश्रेयस्याः
श्रियोगेहं ममापि प्रीतिदंमहत् ॥ २ ॥

यानीहसन्ति लिंगानि तानि सर्वाण्यसंशयम् ।
निर्वाणकारणान्येवस्वयंभून्यपितान्यपि ॥ ३ ॥

यद्यप्येवंतथापीश विशेषंवक्तुमर्हसि । काश्यामनादि
सिद्धानि कानिलिंगानिशंकर ॥ ४ ॥

यत्रदेवःसदातिष्ठेत्संवर्तैऽपिसवल्लभः । यैरियं प्रार्थिति
प्राप्ता काशीमुक्ति पुरीतिच ॥ ५ ॥

यह काशीक्षेत्र कर्म बीज का महौषध, वो मोक्षलक्ष्मी कामंदिर है,
और आपको जैसा प्रिय है, वैसही मुझे भी बहुत प्रीति दायक है ॥ २ ॥
निःसन्देह यहाँपर जितने लिंग हैं, वे चाँदस्वयं प्रगट हुये हों अथवा स्था-
पित किये गये हों, सभी निर्वाण के कारण हैं, ॥ ३ ॥ हे शंकर ! यद्यपि
यह बात तो ऐसीही है, तथापि इस काशी में कौन २ अनादि सिद्ध लिंग
हैं हे ईश, इसी विशेष रूप से वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥ जहाँपर आप शक्ति

के सहित प्रलयकाल में भी (सदा) रहने हैं और जिन लिंगों के, (विराजमान) रहने से यह काशी मुक्ति पुरी के नाम से प्रसिद्ध हुई है ॥ ५ ॥

इत्याकर्ण्य महेशानस्तस्यादेव्याः सुभाषितम् ।

कथयामास विन्ध्यारे महालिंगानिसत्तम ॥ ६ ॥

हे विन्ध्यारिण ! (अगस्त्य) मुनि सत्तम ! महादेव इस प्रकार देवी (पार्वती) के सुभाषित का सुनकर महालिंग (के महात्म्य) को कहने लगे ॥ ६ ॥

देवदेव उवाच-शृणु देवि परंगुह्यक्षेत्रेऽस्मिन्मुक्तिकारणम् ।

इदं विदंति नैवापि ब्रह्मनारायणादयः ॥ ७ ॥

महादेवजी ने कहा-हे देवी ! इस (काशी) क्षेत्र के परम गुप्त मुक्ति के कारण को सुना, इस बात को ब्रह्मा, वो विष्णु, आदि देवता भी नहीं जानते, । ७ ॥

असंख्यातानि लिंगानि पार्वत्यानन्दकानने ।

स्थूलान्यपि च सूक्ष्माणि नाना रत्नमयानि च ॥ ८ ॥

हे पार्वती ! इस आनन्दवन में, बड़े और छोटे असंख्य लिंग नाना विधि रत्न तथा अनेक धातु और बहुतेरे पाषाणों के बने हुये, कितने स्वयम्भु,

(आप से प्रगट हुये) और बहुत से देवता वो ऋषियों से स्थापित किये हुये हैं ॥ ८ ॥

एकैकस्यास्य लिंगस्य महिमाद्यंत वर्जितः ।
मयैवज्ञायतेदेवि सम्यङ् नान्येन केनाचित् ॥ ९ ॥

उनमेंसे प्रत्येक लिंगों की महिमा का आदि और अन्त नहीं (अकथ) है उसे पूर्ण रूपसे मैंहीं जानता हूँ, हे देवी । और किसी को तो ज्ञातही नहीं है ॥ ९ ॥

देव्युवाच—रहस्यं परमं काश्याय देतत्समुदीरितम् ।
तच्छ्रुत्वा त्सुकतां प्राप्तं मनो मे तीव्रवल्लभ ॥ १० ॥
प्रत्येकं महिमानं मे ब्रूयेषां भुवनेश्वर ।
चतुर्दशानां लिंगानां श्रवणादवहारिणाम् ॥ ११ ॥
ओंकारेशस्य लिंगस्य कथमत्र समागमः ।
अत्तिपुण्यं तमात्तस्मात्क्षेत्रादमरकटकात् ॥ १२ ॥
किमात्मकोऽयमोंकारो महिमास्य च कोहर ।
केनाराधिपुरा चैव ददावाराधितश्च किम् ॥ १३ ॥

देवी (पार्वती ने कहा) हे प्यार ! यह जो आपने काशी की परम-
रहस्य कहा सो सुनिमेराचित बहुत उत्सुक हो गया ॥ १० ॥

अब हे भुवन नायक ! इन सबश्रवणमात्रसे पाप हरलेने वाले चौदहो, महा-
 लिंगों में प्रत्येक कामाहात्म्य मुझसे (प्रथम २) वर्णन कीजिये ॥ ११ ॥
 (प्रथम) आति पुण्यतम प्रसिद्ध अमरकंटक क्षेत्रसे यह ओंकारेश्वर
 लिंग यहां कैसे आया ? ॥ १२ ॥ (और) हेदरे ! यह ओंकार का माहात्म्य
 कि (इनका क्या रूप है और इनकी क्या महिमा है, वो पहिले इनकी
 आराधना किसनेकी थी, और उस आराधना करनेवाले को इन्होंने क्या
 वरादिया है, इत्यादि, सब वर्णन कीजिये ॥ १३ ॥

देवदेवउवाच--पुरानंदवनेचात्र ब्रह्मणाविश्वजानिना ।

तपस्तप्तमहोदेवि समाधिदधतापरम् ॥ १४ ॥

महादेवजी ने कहा, हे महा देवी ! पूर्वकाल में विश्वकर्ता ब्रह्मा इसी
 आनन्दवनमें उग्रसमाधी को धारण करके बड़ी भारी तपस्या करने लगे ॥ १४ ॥

पूर्णेयुगसहस्रेऽथमित्वाप तालसप्तकम् ।

उदतिष्टपुरो ज्योतिर्विद्योतितहरिन्मुखम् ॥ १५ ॥

यदंतराविरभवन्निर्व्याजेन समाधिना ।

तदेवपरमंधामवाहिराविरभूद्विधेः ॥ १६ ॥

तदनंतर सहस्रयुग बीत जानेपर सातोपातालों को फोड़कर, समस्त
 दिशाओं को प्रकाशित करती हुई, एक बड़ी भारी ज्योति (ब्रह्माके) स-

मुखहीं निकल पड़ी ॥१५॥ ब्रह्माके भीतर अंतःकर्णमें, निष्कपट (निष्काम)
समाधिके बलसे जोपरम ज्योति प्रगट हुई थी वही बाहर होगई ॥ १६ ॥

योभूच्चट चटाशब्दःस्फुटतो भूमिभागतः ।
तच्छब्दाव्यसृजद्वेधाःसमाधिक्रमतोवशी ॥ १७ ॥
सूष्टाविसृष्ट तद्ध्यानोयावदुन्मल्यलोचने ।
पुरःपश्येद्ददर्शग्रेताव दक्षरमादिमम् ॥ १८ ॥

उस समय भूमिभाग के फटने स चटचटाहट हुई उस शब्द के वशी
होकर विधाता की समाधी धीरे २ खुली ॥ १७ ॥ फिरतो ज्योंही ब्रह्माने
ध्यानको छोड़ आँखें खोलकर देखातो त्योंही अपने आंग आदिमें अक्षरही
को अविलोकन किया ॥ १८ ॥

अकारं सत्त्व संपन्न मृक्क्षत्रंसृष्टिपालकम् ।
नारायणात्मकंसाक्षात्तमः पारेप्रतिष्ठितम् ॥ १९ ॥
उकारमथतस्याग्रजोरूपंयजुर्जनिम् ।
विधातारं समस्तस्यस्वकारमिव विंवितम् ॥ २० ॥
नीरवध्वांतसंकेत सदनाभंतदग्रतः ।
मकारं सददर्शार्थतमोरूपं विशेषतः ॥ २१ ॥

साम्नोयेनिलयेहेतुं साक्षाद्भू स्वरूपिणम् ।
अथतत्पुरतोधाताव्यधात्स्वन यनातिथिम ॥ २२ ॥

(उस अक्षरमें) सत्वगुणपूर्ण ऋग्वेद, के उत्पत्ति का क्षेत्र, सृष्टिपालक
मागायणात्मक, और तमोगुणके पारमस्थित साक्षात् अकार को ॥ १९ ॥
और उसके आगे रजो गुणमय, यजुर्वेद की जन्मभूमि, सबकी सृष्टि के
कर्ता अपनं रूपके प्रतिविम्बरूप उकार को ॥ २० ॥ वांतिम्के पीछे संकेत
मंदिर की नाई, निःशब्द (सून्य स्थान के) समान कृष्णवर्ण, तमोरूप,
सामवेद के जन्म स्थलसाक्षात् रुद्र स्वरूप प्रलय के कारण मकार को
देखा इसके अनन्तर फिर भी विधाता ने उसके आंग अपनी दृष्टि फैलाकर
देखा तो ॥ २२ ॥

विश्वरूप मयाकारं सगुणं वापि निर्गुणम् ।
अनाख्यनाद सदनं परमानंदविग्रहम् ॥ २३ ॥
शब्द ब्रह्मेतियत्ख्यातं सर्ववाङ्मयकारणम् ।
अथोपरिष्ठान्नादस्य विन्दुरूपंपरात्परम् ॥ २४ ॥
कारणं कारणानांचजगद्योनिं चतंपरम ।
विधिर्विलोकयांचक्रेतपसागोचरीकृतम् ॥ २५ ॥

विश्वरूपकीनाई आकारसगुण, अथच, निर्गुण, अकथनीय, नादकामंदिर
परमानन्दकी मूर्तिविराजमान, है ॥ २६ ॥ जिससंस्तवाङ्मय का कारण-

शब्दब्रह्म, (वेद) कहाजाताहै, फिर उसनादकेभीउपर सर्वप्रदान कारणोंके भीकारण परमजगद्योनि, तपोबलसेनयनगाजरहुए, उसविन्दुरूपको भी ब्रह्माने देखलिया, ॥ २४-२५ ॥

अवनादोमितिरेव्यातंसर्वस्यास्यप्रभावतः ।

भक्तमुन्नयते यस्मात्तदोमितियईरितः ॥२६॥

अरूपोपिसरूपाव्यः सधात्रानेत्रगीकृतः ।

तारयेद्यद्भवांभोधः स्वजपासक्तमानसम् ॥

ततस्तार इतिरेव्यातो यस्तंब्रह्मा व्यलोकयत् ॥२७॥

जोअपनेभावसेसमस्तलोकोंकेअवन (पालन) करनेहैसे, ओम् कहाजाताहै, अथवा भक्तकीउन्नतिकरने केकारणसेजैसेॐकहेतेहैं, उसरूप हीन (अरूप) को रुपधारी होनेपर ब्रह्मादेखसके, जोअपनेजपमें आशक्त चित्तभक्तोंको, भवसागरसेपारउतारदेता है, औरतारनेहीकेकारणसे, जिसका तार नाम पड़ा, विधातानेउसीहीकोप्रत्यक्षकियाहै, ॥ २६-२७ ॥

तमालोक्यततोवेधा लिंगरूपिणमीश्वरम् ।

पंचाक्षरंपंचाच्चभिन्नंतुष्टावशंकरम् ॥ २८ ॥

तदनंतर ब्रह्मादेवप्रपंचसेभिन्न उसीपंचाक्षरमय लिंगरूपी ईश्व को देखकर, शंकरकीस्तुतिकरनेलगे ॥ २८ ॥

ब्रह्मोवाच-नमोऽङ्कार रूपाय नमोऽक्षरवपुर्धृते ।
 नमोऽकारादि वर्णानां प्रभवाय सदाशिव ॥ २९ ॥
 अकारस्त्वमुकारस्त्वं मकारस्त्वमनाकृते ।
 ऋग्यजुःसामरूपाय रूपातीताय ते नमः ॥ ३० ॥
 नमो नादात्मने तुभ्यं नमो विंदुकलात्मने ।
 अलिङ्गलिङ्ग रूपाय सर्वरूपस्वरूपिणे ॥ ३१ ॥
 नमस्ते धामनिधये निधनादिविवर्जित ।
 नमो भवाय रूद्राय शर्वाय च नमोस्तुते ॥ ३२ ॥
 त्वत्कंठे नृकरोटीयं धूर्जटे याविभासते ।
 सर्वेषां तदग्धानां सास्फूटं बीजमालिका ॥ ३३ ॥
 त्वत्तः सर्वमिदं शंभो त्वयि सर्वचराचरम् ।
 कस्त्वांस्तोतुं विजानाति पुरावाचामगोचरम् ॥ ३४ ॥
 स्तोता त्वंहि स्तुतिस्त्वं हि नित्यं स्तुत्यस्त्वमेव च ।
 वेदार्थोन्नमः शिवायेति नान्यद्वेदार्थे वा किंचन ॥ ३५ ॥

त्वमे वहि शरण्यमे त्वमे वहि गतिः परा ।

त्वामेव प्रणमामीशनमस्तुभ्यं नमोनमः ॥ ३६ ॥

ब्रह्मा बोले-हे सदाशिव ! आपही अक्षरों के रूपधारी अकारादि अक्षरों के उत्पत्ति कारण. आँकार स्वरूप हैं, आप को वारम्बार नमस्कार है, ॥ ३९ ॥ हे निराकार ! आपही आकार उकार, और मकार हैं, आप वस्तुतः रूपातीत हैं पर ऋग यजु और साम वेदों के रूप आपही हैं, अतएव आप को प्रणाम है ॥ ३० ॥ आपही नादविन्दु और काला के स्वरूप हैं, आप तो लिंगरहित होने परभी लिंगात्मक हैं, और सर्वरूपों के स्वरूप हैं. आप को नमस्कार है, ॥ ३१ ॥ हे ! आद्यन्तहीन आप ने जो निधिभव रुद्र और सर्वस्वरूप हैं, आपको अनेक प्रणतियां हैं, ॥ ३२ ॥ हे धूर्जट ! आप स्वच्छाचारी हैं, अतएव यह कपालमाला तो आप की लीलामात्र है और, आपके कंठमें नरमुड़माल जो शोभिन हो रही हैं इस से स्पष्टही अंतरदग्ध सवलोगों की बीजमाला ज्ञात है, ॥ ३३ ॥ हे शंभो ! आपही से यह समस्त संसार चला है, और आपही पर निर्भर है, आप तो पुरातन वाक्पथ के भी अगोचर हैं, फिर आप की स्तुति कौन कर सक्ता है, ॥ ३४ ॥ आपही स्तुतिकर्ता, आपही स्तुति, और आपही नित्यस्तुत्य हैं, तब फिर मैं केवल " नमःशिवायः " भर जानता हूं, और तो कुछ नहीं समझता

॥ ३५ ॥ आपही मेरे शरणदाता और आपही परमगति हैं, मैं तो आपही का प्रणाम करता हूँ, हे ईश ! आपको बारम्बार नमस्कार है ॥ ३६ ॥

इत्युदीर्यासकृद्रेधाः प्रणनाम महेश्वरम् ।
प्रणवाख्यं महालिङ्ग रूपिणं दंडवत्क्षितौ ॥ ३७ ॥

इस प्रकारसे ब्रह्मा अनेकवार ओंकार नामक महालिङ्गरूपी महेश्वरकी स्तुतिकरके, भूतलपर दण्डवत प्रणाम करने लगे ॥ ३७ ॥

इश्वरउवाच ततो गिरिंद्रतनयश्चुत्वा ब्रह्मस्तुतिं पराम् ।

परमैश्वर्य संपत्ति हेतुं तुष्टोहमद्भुतम् ॥ ३८ ॥

अमूर्तोऽहंततो लिङ्गा न्मूर्तिं मास्थायशांकरीम् ।

प्रसन्नो स्मिवरं ब्रूही त्मुवाच चतुराननम् ॥ ३९ ॥

इश्वरने कहा, हे गिरिंद्रतनये ! तबतो ब्रह्माकी परमेश्वर्य संपत्ति की जड़ (हेतु) उस बड़ी विचित्र स्तुति को सुनि मैं बहुतही संतुष्ट हो गया ॥ ३८ ॥ फिर तो मैं मूर्तिहीन (निराकार) होने परभी उसी लिङ्ग से शंकरमूर्ति धारण करि ब्रह्मा से कहने लगा, कि मैं प्रसन्न हूँ बर मांगो ॥ ३९ ॥

चतुर्वक्त्रः समुत्थाय प्रत्यक्षं वीक्ष्य मामथ ।

पुनर्जयजपेत्युक्त्वा प्रणनामकृतांजलिः ॥ ४० ॥

आनंद वाष्प सलिलनेत्रोद्दृष्टतनूरुहः ।

गद्गदेनस्वरेणाथ प्रोवाच जलजासनः ॥ ४१ ॥

पुनः ब्रह्मा (यह सुन) चउकर खड़े होतेही मुझे प्रत्यक्ष देखकर जयजयकार करते हुये दाथों को जांड़ि (मुझे) प्रणाम करने लगे ॥ ४० ॥ आनंदअश्रु जल से पूर्ण नेत्र और पुलकित शरीर हो कर ब्रह्मदेव गद्गद स्वरसे कहने लगे ॥ ४१ ॥

ब्रह्मोवाच-यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वशेमम ।

तदं तस्मिन्महालिंगे सान्निध्यं तस्मैऽस्तुशंकर ॥ ४२ ॥

अयमेववरो देयो नान्यं वरमहं वृणे ।

ओं कोरेश्वर नामैतदस्तु भक्तैकमुक्तिदम् ॥ ४३ ॥

ब्रह्माने कहा, यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मुझे वरदान अवश्य किया चाहते हैं तो हे शंकर ! इस महा लिंग में आप सान्निध्य (सदा निवास) करें ॥ ४२ ॥ और मुझको यही वरदान किया जाय मैं दूसरा कोई वर नहीं चाहता कि इस लिंगका ओंकोरेश्वर नाम पड़े, और यह भक्तजनोंका एकमात्र मोक्षदायक होवै ॥ ४३ ॥

स्कंद उवाच-विध्युक्त मिति विप्रर्षे समाकर्ण्य तदेशिता ।

उवाच वचनं चैत तत्थास्तु चतुराननम् ॥ ४३ ॥

वरानन्यान पिविभुः प्रसन्नस्तत्क्षणाददौ ।

विधये दीर्घतपसे तया स्तुत्यातितोषितः ॥ ४५ ॥

स्कंद ने कहा-हे विप्रर्षे ! भगवान् शिव ने विधाता का कहना सुनकर
उनसे तथास्तु कहि दिया ॥ ४४ ॥ और स्तुति से संतुष्ट होकर उसी क्षण
बड़ी तपस्या करनेवाले ब्रह्मा को और भी बहुत से वरों को दिया ॥ ४५ ॥

इश्वर उवाच-पिता महस्त्वं सर्वेषां सर्वेषां मान्य भूर्भवान्

त्वत्तपः फल दानार्थं यदेत लिल्लग मुत्थितम् ॥ ४६ ॥

परमोकाररूपं च शब्द ब्रह्म मयं विधे । अस्याराधनतः

पुंसां नदूरं ब्रह्मणः पदम् ॥ ४७ ॥

ईश्वर ने कहा-हे विधि ! तुम सब किसी क पिता मह वो सब लोगों के
माननीय होंगे, और यह जो शब्द ब्रह्म मय ओंकार रूप महालिंग तुम्हारी
ही तपस्या के फल देने को प्रगट हुआ है, सो इसके आराधन करने से पुरुषों
को ब्रह्मपद कुछ दूर नहीं रह जावेगा ॥

अकाराख्य मिदंलिंगमुकाराख्य मिदंपरम् ।

मकारा द्वयमेतच्च नादारव्यं विंदु संज्ञकम् ॥ ४८ ॥

पंचायतन मशान मित्थ मेतदुदीरितम् ।

मोक्षाय सर्व जंतू नामस्मिन्नानंदकानने ॥ ४९ ॥

इस आनन्द कानन में सब लोगों के मोक्षार्थ, अकार, उकार, मकार, नाद, और विन्दु, संज्ञक यह लिंग शिव पंचायतन कहा गया है, ॥ ४९ ॥

एतन्नादेश्वरं लिंगमेतल्लिंगं सुदुर्लभम् ।

सुरम्येमतस्योदरीं तीरे दृष्टं स्पृष्टं विमुक्तिदम् ॥ ५० ॥

यही नादेश्वर लिंग है यह लिंग बड़ा ही दुर्लभ है, सुरम्यमतस्योदरी के तीर पर दर्शन स्पर्शन करने से यह विशेष मुक्ति देता है ॥

ओंकार दर्शनादेव वाजि मेध फलं लभेत् ।

तस्मात्काश्यां प्रयत्नेन दृश्य ओंकारेश्वरः ॥ ५१ ॥

दुर्लभं मानवं जन्म चतुर्वर्गैक साधनम् ।

जल वृद्धुदुवत्त तस्यान्नादेशोये ननेक्षितः ॥ ५२ ॥

ओंकारेश्वर केकेवल दर्शनहींसे, अश्वमेधयज्ञका फलमिलताहै, अतएव काशी धाममें प्रयत्न उठाकर ओंकारेश्वरका दर्शन अवश्य करना चाहिये ॥ ५१ ॥ और जो कोई नादेश्वर (ओंकारेश्वर) का दर्शन न कर सकैगा, उसका दुर्लभ मनुष्य जन्म चतुर्वर्ग का एक मात्र साधन होने पर भी जलके बुल्ले के समान व्यर्थ ही हो जायगा ॥ ५२ ॥

तस्मिन्क्षेत्रे महा पुण्ये लिंग मोंकार संज्ञकम् ।
तत्रसिद्धिं परां प्राप्ता देहे नानेन साधकाः ॥ ५३ ॥
कपिल श्रैवसावर्णिः श्रीकंठः पिंगलौशुमान् ।
एतेपाशुपताः सिद्धास्तल्लिंगाराधने नही ॥ ५४ ॥
एक दातस्य लिंगस्य कृत्वा पंचापि पूजनम् ।
नृत्यंतः सहुडुत्कारं तस्मिँ लिंगे लयंगयुः ॥ ५५ ॥

इस पुण्यतम महा क्षेत्र में, ओंकारेश्वर नामक (यह अद्भुत) लिंग है, जहां पर अनेक साधक लें.गों ने इसी शरीर से परम सिद्धि का लाभ किया है, ॥ ५३ ॥ यथा इसी लिंग की आराधना से कपिल-सावर्णि, श्रीकंठ, पिप्पल, और अंशुमान, यह सब शैव लोग सिद्ध हो गये हैं ॥ ५४ ॥ वे सब लोग एक बार, इस लिंग का पंचो पचार पूजन कर हुडुत्कार के साथ ! नृत्य करते हुये, इसी लिंग में लीन होगये, ॥ ५५ ॥
गर्गुवाच-अन्यच्चतेप्रबक्ष्यामितत्रय दृत्तमद्भुतम् ।
निशामय महा बुद्धेदमन द्विजसत्तम ॥ ५६ ॥

गर्ग ने कहा, - हे महाबुद्धे ! दमन ! द्विजसत्तम् ! वहां का एक और भी विचित्र चरित्र जो कि हो चुका है तुमसे कहता हूं, ५६ ॥

एकामेकी मुने तत्रचरं तीलिंग संनिधौ ।

प्रदक्षिणं सदा कुर्यान्निर्माल्याक्षत भक्षिणी ॥ ५७ ॥

कश्चित्काकः समालोक्य मंडूकीं तामितस्ततः ।

प्रोप्लूयमाना मादायंचच्चा क्षेत्रा द्वाहिर्गतः ॥ ५८ ॥

हे मुने ! एक मेढुकी, वहीं पर, (आंकारेश्वर के मंदिर में) लिंग के समीप घूमती फिरती प्रदक्षिणा करती हुई, सदा शिवनिर्माल (चढ़ा हुआ) अक्षत आदि खाती थी ॥ ५७ ॥ सो एक दिन उस मेढुकी को इधर उधर कूदते देखकर, एक कौआ उसे अपने चोंच में पकड़ कर क्षेत्र के बाहर उठा लेआया, ॥ ५९ ॥

वर्षाम्भीतेन साक्षिप्ता काकेन क्षेत्र वाह्यतः ।

अथ साकाल तोमेकी तत्रैवक्षेत्र सत्तमे ॥ ५९ ॥

प्रदक्षिणी करणतो लिंगस्य स्पर्शनादपी ।

पुण्यां पुण्यवता जाता कन्या पुष्प वटगृह ॥ ६० ॥

काशी क्षेत्र के बाहर जाकर उस कौए ने मेढुकी को फेंक दिया, (शिवनिर्माल खाने के अपराध से, उसने काशी के बाहर कौए के फेकने से मृत्यु पाया) पश्चात् काला नुसार पुनः उसी उत्तम (काशी) क्षेत्रमें ॥ ५९ ॥ उस (आंकारेश्वर) लिंग की प्रदक्षिणा, और स्पर्श करने के

पुण्य बल से पवित्र होकर पुष्प वटू (माली) के घर में पुन्य वर्ती
नाम वाली कन्या उत्पन्न हुई ॥ ६० ॥

सम्यग्गीत रहस्य ज्ञानी तरां मधुरस्वरा ।

सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्छना स्त्वेक विंशतिः ॥ ६१ ॥

प्राग्जन्म वासनायोगादोकारंबद्धमंस्तवै ।

स्वभावचंचलं चेतस्त स्यास्त लिंगसेवनात् ॥ ६२ ॥

दमनस्थैर्यं मगम द्योगेनेव महात्मनः ।

नादिवा बाधयां चक्रे क्षुत्तृ णिद्राक्ष पासुताम् ॥ ६३ ॥

वह कन्या बड़ीही मधुर स्वर वाली और सम्यक् प्रकार से गति
(गाने के भेदों) को जानती थी, सातो स्वर, तीनों ग्राम इक्कीसो मूर्छ
नादि (की ज्ञाता वह कन्या) ॥ ६१ ॥ पूर्वजन्म की वासना के बलसे,
ओंकारेश्वर ही को विशेष मानती थी, हे दमन ! स्वभावतः चंचल होने
पर भी महात्मा जन काचित्त योगाभ्यास से जिस भीति स्थिर हो जाता
है तैसेही उस लिंग के सेवन से, उसका भी मन स्थिर हो गया था उसे
दिन में क्षुधा, प्यास, औरात्री में निद्रा कातर नहीं बना सकती थी
॥ ६३ ॥

स्वात्माराम मनंतचं सर्वगं सर्व दर्शिनम् ।

सर्वदं सर्व भोक्तारं सर्वं सर्व सुखा स्पदम् ॥ ६४ ॥

वागिन्द्रियं तदीयंच प्रोच्चरत्त दहर्निशम् ।

नामांतरं नगृह्णाति कचिदन्यस्य कस्याचित् ॥ ६५ ॥

स्वात्माराम, अनंत, सर्व व्यापी, सर्व दर्शी, सर्व स्वदाता, सर्व सुखा
स्पदादि, सब कुछ ओंकारेश्वर ही हैं ॥ ६४ ॥ यही बात उसकी जिह्वा
रात दिन कहा करती थी और कभी दूसरे किसी का नाम भी नहीं
लेती थी ॥ ६५ ॥

वैशाखस्य चतुर्दश्यामेकदा सातु माधवी ।

रात्रौ जागरणं कृत्वा दिवोपवसनान्विता ॥ ६६ ॥

यात्रा मिलित भक्तैषु प्रातर्या तेषु सर्वतः

समार्ज नादिकं कृत्वा लिंग मभ्यर्च्य हर्षतः ॥ ६७ ॥

गायंती मधुरंगीतं नृत्यंती निज लीलया ।

ध्यायंती लिंग मौंकारं तत्र लिंगेलयंययौ ॥ ६८ ॥

एकवार वैशाख मासकी शुक्ल चतुर्दशी के दिन उपवास, और रात्रि
में जागरण करिके वह माधवी (पुन्यवती) प्रातःकाल जबकि यात्रा के
लिये एकत्र हुये भक्त लोग, इधर उधर चले गये तब बड़े हर्ष के साथ
मंदिर को झाड़-बोहारकर लिंग की पूजा करने के उपरान्त मधुरंगीत
को गाती हुई, भक्ति के आवेश में आकर, नाचती हुई एवं, ओंकार लिंग
का ध्यान करती हुई, उसी लिंग में लीन हो गई ॥ ६८ ॥

अनेनैव शरीरेण पार्थिवेन महा मातिः ।

अस्मदाचार्यं मुख्यानां पश्यतां च तपस्विनाम् ॥६९॥

प्रादुर्बभूवय लिंगा ज्योतिर्जटिलितांबरम् ।

तत्र ज्योतिषि साबाला ज्योतिर्मग्न्यापि साप्यभूत् ॥७०॥

हम लोगों के प्रधान आचार्य, तपस्वियों के देखते ही देखते वह महा बुद्धिमती कन्या इसी प्रार्थिव शरीर से, आकाश में मरी हुई, जो ज्योति उसी लिंग से निकली उसी में ज्योति रूप हो गई ॥ ७० ॥

राधशुक्ल चतुर्दश्यामद्यापिक्षेत्रवासिनः ।

तत्र यात्रां प्रकुर्वति महोत्सव पुरः सराः ॥ ७१ ॥

तत्र जागरणं कृत्वा चतुर्दश्यामुपोषिताः ।

प्राप्नुवन्ति परं ज्ञानं यत्र कुत्रापिवै मृताः ॥ ७२ ॥

आज तक उस क्षेत्र के निवासी लोग वैशाख मासकी शुक्ल चतुर्दशी को बड़े उत्सव के साथ वहां, (आंकारेश्वर) की यात्रा करते हैं ॥७१॥ वहां पर चतुर्दशी के दिन उपवास और (रात्रि) जागरण करने से चाहे कहीं पर मरै, परन्तु (अंत में) परम ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, ॥ ७२ ॥

ब्रह्मांडो दरमध्येतु यानि तीर्थानि सर्वतः ।

तानि वैशाख भूताया मायांत्यो कृति दर्शने ॥७३॥

स्नात्वा मत्स्योदरी तीर्थे विलो क्यो कार्गमीश्वरम् ।

नजातु जायते जन्तु जननी जठरे क्वचित् ॥ ७४ ॥

ब्रह्माण्ड के भीतर, सर्वत्र के जितने ही (प्रयाग, अवध, मथुराआदि) तीर्थ हैं, सोसब वैशाख की शुक्ल चतुर्दशी को ओंकारेश्वर के दर्शनार्थ (काशी में) आते हैं ॥ ७३ ॥ यदी कोई जीव, मत्स्योदरी तीर्थ में, (केवल) स्नान करके इस ओंकारेश्वर का दर्शन कर सकै तो उसै फिर कभी जननी के जठर का दुःख नहीं भोगना पड़ेगा, (आवागमन से रहित हो जायगा) ॥ ७४ ॥

तत्र मत्स्योदरीं स्नात्वा स्वर्धुनीं वरुणा प्लुताम् ।

कृत कृत्यो भवेज्जंतुर्नैव शोचति कुत्रचित् ॥ ७५ ॥

निरीक्ष्य कपिलेशानं स्नात्वा मत्स्योदरीजले ।

कृत्वा पिंडप्रदानानि पितृणाम नृणो भवेत् ॥ ७६ ॥

उस गंगा और वरुणा के जल से परिपूर्ण मत्स्योदरी तीर्थ में स्नान करके जीव कृत कृत्य हो जाते हैं, और उसै फिर कभी (कहींपर) शोक नहीं करना पड़ता ॥ ७५ ॥ और मत्स्योदरी में स्नान वो पिंडदान करके कपिलेश्वर (ओंकारेश्वर) के दर्शन से मनुष्य पित्रों के रिण से भी छूट जाता है ॥ ७६ ॥

अविमुक्तं परंक्षेत्रं ब्रह्मांडा दपि सर्वतः ।

ततोपि पर ओंकार उक्तो मत्स्योदरी तटे ॥ ७७ ॥

प्रणवेशोऽङ्गयैः काश्यां ननतो नापि चार्चितः ।

किमर्थं ते समुत्पन्ना मातृ तारुण्य हारिणिः ॥ ७८ ॥

(प्रथमतो) समस्त ब्रह्माण्ड भर में आविमुक्त (काशी) क्षेत्र सबसे प्रधान है, उसमें भी मत्स्योदरी के तीर पर ओंकारेश्वर का स्थान और भी श्रेष्ठ है ॥ ७७ ॥ अहो जिन लोगों ने काशी में ओंकारेश्वर को न प्रणाम ही किया और न पूजनही किया, वह सब (अपनी) माता की तरुणाई को बिगाड़ने के लिये क्यों उत्पन्न हुये, ॥ ७८ ॥

इदानीं मम भाग्येन स्मारितो हन्वया मुने ।

अहमप्याग मिष्यामि यामः कार्शीं शनैःशनैः ॥ ७९ ॥

इत्याख्याय कथां रम्यां गर्गः पाशु पतोत्तमः ।

भारद्वाजेन सहितः प्राप वाराणसीं पुरीम् ॥ ८० ॥

हे मुनि ! इस घड़ी तुमने मेरे भाग्य ही से मुझे स्मरण करा दिया मैं भी आता हूँ, धीरे धीरे काशी ही को चलूँगा ॥ ८१ ॥ इस प्रकार से पाशु पत श्रेष्ठ गर्गाचार्य इस रमणीय कथा को भरद्वाज नन्दन दमन से कहकर पुनः दमन के साथ वाराणसी पुरी को पहुँच गये ॥ ८० ॥

दमनोपि हि धर्मात्मा गर्गाचार्येण संयुतः ।

आराध्य श्रीमदों कारंतस्मिँ लिंगे लयंगतः ॥ ८१ ॥

और वह धर्मात्मा दमन भी गर्गाचार्य के साथ श्रीमान् ओंकारेश्वर को आराधना करके उसी लिंग में लीन हो गये ॥ ८१ ॥

स्कन्द उवाच-इत्यलारे परं स्थानमोंकारमविमुक्तके ।

तत्रासिद्धिं परां जग्मुः साधका बहु शोमुने ॥ ८२ ॥

स्कन्द ने कहा इल्लरिपो (अगस्त्य) आर्यमुक्त क्षेत्र में, ओंकारेश्वर एक प्रधान स्थान है, क्योंकि हे मुने ! वहाँपर बहुतेरे साधक लोग, परम सिद्धि को प्राप्त हो चुके हैं ॥ ८२ ॥

ओंकार सदृशं लिंगं न क्वचिज्जगती तले ।

इतिगौर्यै समाख्यातं देव देवेन निश्चितम् ॥ ८३ ॥

प्रातः संध्यां करो म्येव सदीका निकेतने ।

तत्रै कापि कृता संध्या सर्व पातककृन्तनी ॥ ८४ ॥

यह बात निश्चित रूप से श्री महादेवजी ने श्री गौरी जी से कहा है कि भूतल में ओंकारेश्वर के समान दूसरा कोई लिंग नहीं है, और मैं प्रातः काल की संध्या सदैव ओंकारेश्वर ही के मंदिर में करता हूँ वहाँ एक भी संध्या करने से समस्त पातक दूर ही जाते हैं, ॥ ८४ ॥

इम मध्याय माकर्ण्य नरस्तद्गतमानसः ।

विमुक्तः सर्व पापभ्यः शिवलोक मवाप्नुयात् ॥ ८५ ॥

जो मनुष्य तद्गत चित्त होकर इस अध्याय को पढ़े वा श्रवण करे तो वह सब पापों से विमुक्त हो कर शिव लोक में प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥

इति श्री स्कन्द पुराणे त्रुत्यै काशी खण्डे उत्तरार्धान्तर्गते श्री ओंकारेश्वर साहात्म्य नाम ग्रन्थः भाषा टीका यां समाप्तोऽयम् ॥

ग्रन्थ करता कृत, तथा स्वाधीन पुस्तकों की सूची ॥

श्रीलीलानुकरण माहात्म, इसमें श्रीराम कछाादि के लीला करने वा देखने तथा इससे क्या लाभ होता है यह सब शास्त्रोक दिखलाये गये हैं मू० ८)

बैष्णव वाटिका, प्रथम भाग तथा दूसरा वो तीसरा भाग, इसमें भगवत्सम्बन्धी हिन्दी भाषा में अनेक चाल की अनेक गंजलैं है । मूल्य प्रति भाग ॥)

राघवमहात्रयोत्सव, इसमें श्री रघुनन्द आनन्द कन्द श्री रामचन्द्रजी के जन्म, तथा विवाह वो श्री राम राजोत्सव, के अनेक राग रागिनियों में अनेक पद हैं मू० ८)

श्रीमिथिलानगर दर्शण, इसमें श्रीरामजी के मिथिलानगर देखने समय व्योपारियों का अपने व्योपार सम्बन्धी वस्तुओं द्वारा अश्लेष (दो अर्थी) शब्दों में स्तुति है, अद्भुत काव्य मूल्य ३)

फाग रस रंग, भगवत् सम्बन्धी अनेक चालकी अनेक होलियां मू० ८)

पावस प्रमोद, पावस रितु में गानेयोग्य कजली आदि मू० ॥

कायस्थकल्पतरु मूल, (यमद्वितियां व्रतं कथा) इसमें श्रीचित्रगुप्त वंशीय कायस्थों की उत्पत्ती वर्ण विवेक कर्म धर्मादि, संपूर्ण श्रुति शास्त्र पुराणों से संग्रह करके रक्खे गये हैं, संस्कृत मूल भाषा टीका सहित छपकर तैयार है, यद्यपि यह पुस्तक सभी के देखने योग्य है तथापि कायस्थों की तो परम उपयोगी किन्तु सर्वस्व है मू० ॥)

साध्वी सुखद दोहावली, यह कुलीन स्त्रियों के लिये परमोपयोगी है मू० ॥

ग्रहण माहात्म्य, इसका अभिप्रायनामही से प्रगट हैं मू० ॥

श्रीआँकारेश्वर माहात्म्य, हाथ कंगन को आरत्ती क्या है मूल्य ७

विशेष सूचना, बिना नकद मूल्य पाये या वी० पी० चारसल के पुस्तकें न दी जायंगी । डाक महसूलादि जिस्ने ग्राहक के रहेंगे

मिलने का पता—

मुं० हरिजन लाल, चित्रगुप्त वंशीय वर्मा, सन्निकट कूपवलुआबीर, काजीमंडी, श० काशी ।

